

# कृषि में विकेंद्रित नीतियों की ज़रूरत

भारत डोगरा

हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में वहां की जलवायु, ज़मीन व पर्यावरण की स्थिति को देखते हुए इन स्थितियों के अनुकूल कृषि के विविध तौर-तरीके, विविध फसलें व उनकी अनेक किस्में, मिश्रित खेती व फसल चक्र, सावधानी से संजोए गए हज़ारों तरह के बीज विकसित हुए। यह कृषि विकास की एक बेहद विकेंद्रित पद्धति थी जिसमें कुछ ही मील की दूरी पर स्थितियां बदलने पर कृषि के तौर-तरीके व फसल-चक्र भी बदल जाते थे। एक ही गांव में अलग-अलग तरह की भूमि के लिए अलग तरह की फसल किस्में और बीज उपलब्ध होते थे और इन सबका समृद्ध ज्ञान किसानों और खेत मज़दूरों को होता था।

पर वर्ष 1965 के आसपास कृषि को अति केंद्रीकृत बनाने के कुछ निर्णय लिए गए और देश के एक बड़े भाग के लिए काफी हद तक एक-सी तकनीक, एक-से जेनेटिक आधार की फसलों के प्रसार की नीति अपनाई। इन विदेशी किस्मों की विशेष पहचान यह थी कि ये अधिक रासायनिक खाद को सहने की क्षमता रखती थी। और मूलतः इसी वजह से इनमें बेहतर उत्पादन देने की क्षमता थी। इनका जेनेटिक आधार प्रायः संकीर्ण था और इनमें बीमारियों व हानिकारक कीड़ों का प्रकोप तेज़ी से फैलने की संभावना अधिक थी।

चूंकि सरकारी नीति ने बेहद केंद्रीकृत तरीके से, प्रचार-प्रसार के सभी साधनों का उपयोग करके इन विदेशी फसलों को तेज़ी से फैलाया, अतः एक दशक से भी कम समय में देश के एक बड़े भाग में अपनी सदियों से चली आ रही फसलों व उनकी किस्मों, विविध बीजों व उनसे जुड़े तमाम स्थानीय ज्ञान को त्यागकर किसानों ने इन नई फसल किस्मों और उनसे जुड़ी तकनीकों को अपना लिया, जिसे हरित क्रांति कहा गया। इस तरह के तेज़ बदलाव को हम देश की सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल धान में वर्ष 1965-78 के 13 वर्षों में हुए बदलाव से समझ सकते हैं।

धान में अति केंद्रीकरण की नीतियां भी वर्ष 1965 के

आसपास शुरू हुई थीं जब हरित क्रांति के नाम पर देश के बड़े भाग में नए बीज फैलाए गए। ये नई किस्में ऐसी थीं जो रासायनिक खाद को अधिक मात्रा में सह सकती थीं। इन्हें उच्च उपज किस्में कहा गया। इनके माध्यम से पूरे देश में संकीर्ण जेनेटिक आधार की नई किस्में फैलाकर अति केंद्रीकरण शुरू हुआ और परंपरागत जैव-विविधता का तेज़ी से ह्रास हुआ।

कुछ विख्यात वैज्ञानिकों ने उस समय भी इस नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। विशेषकर केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक (CRRRI) के कुछ वैज्ञानिकों ने यह विरोध किया था। उन दिनों CRRRI के कुछ वैज्ञानिक यह देखकर सतर्क हो गए थे कि कुछ विदेशी वैज्ञानिक CRRRI में व हैदराबाद स्थित एक अन्य अनुसंधान केंद्र जैसे महत्वपूर्ण स्थानों में कीड़ों व बीमारियों के प्रकोपों के प्रति संवेदनशील विदेशी किस्में ला रहे थे, वह भी बिना किसी अनुमति के। जब उनकी गतिविधियों पर और ध्यान दिया गया तो पता चला कि वे निदेशक के पीठ पीछे कुछ कर्मचारियों, वैज्ञानिकों से सांठ-गांठ कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे।

15 मार्च 1966 को CRRRI के निदेशक डॉ. आर.एच. रिछारिया ने भारतीय कृषि अनुसंधान के प्रधान निदेशक को एक गोपनीय व अति महत्वपूर्ण पत्र लिखकर आगाह किया कि “मनीला स्थित अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (IRRI) इस देश में बहुत-सी प्रयोगात्मक चावल की किस्में भेजता रहा है और ये विभिन्न राज्यों में उगाई जा रही हैं। यह मेरे ध्यान में आया है कि इनमें से अधिकतर किस्में एक बहुत अजीब-सी बीमारी के प्रति संवेदनशील हैं, एक ऐसी बीमारी जो अभी तक इस देश में ज्ञात नहीं है और शक है कि यह एक वायरस जनित रोग है।”

यह चेतावनी देने के बाद इस पत्र के लेखक ने आगे लिखा, “मैं इस ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि पिछले अनुसंधान कार्यकर्ता सम्मेलन, नवंबर 1965 में चावल उगाने

वाले विभिन्न राज्यों के प्रसंस्करण कार्यक्रम के लिए एक दाता जनक के रूप में आई.आर. 9-60, किस्म सुझाई गई है। पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह किस्म मेरे द्वारा केंद्रीय चावल अनुसंधान केंद्र व अन्य दो केंद्रों पर आरंभिक प्ररोही अवस्था में येलोइंग रोग से संक्रमित पाई गई है। मैं आपको यह सूचना भी दे दूँ कि जानकारी के स्रोत से यह भी पता चला है कि आई.आर. 9-60 न केवल टुंगरू वायरस बल्कि बैक्टीरियल ब्लाइट के प्रति भी संवेदनशील है। इस प्रकार यह किस्म दाता जनक के रूप में उचित नहीं है। यदि इसका ऐसा उपयोग होता है, तो जहां ये किस्में उगाई जाएंगी वहां बीमारियों का प्रसार होगा। यह शीघ्र ही हमारे नियंत्रण से बाहर की स्थिति होगी।... इस भयंकर बीमारी का प्रभाव देश में कितना बढ़ता जा रहा है वह इससे पता चलता है कि पिछले वर्ष ताइचंग नेटिव-1 किस्म ने आरंभिक प्ररोही अवस्था में पत्तों का पीला पड़ना नहीं दिखाया पर अब यह प्रकट हुआ है। चूंकि खाद्य व कृषि मंत्रालय का निकट भविष्य में इस किस्म के तेज़ प्रसार का व्यापक कार्यक्रम है, अतः जिस आपदा के लक्षण दिख रहे हैं उससे बचने के लिए तुरंत कदम उठाए जाने चाहिए।”

इस चेतावनी का महत्व शीघ्र पता चला जब इस नीति के कारण बहुत क्षति हुई व बीमारी तथा कीड़ों की समस्या बढ़ गई। चावल प्रजनन के ख्याति प्राप्त विशेषज्ञों के एक टास्क फोर्स की बैठक 19-20 फरवरी 1979 को केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक में हुई व उसकी रिपोर्ट में इस चावल तकनीक की विफलता के कुछ कारण बताए गए हैं - विदेशी उच्च उपज किस्म का संकीर्ण आनुवंशिक आधार, भारत के अधिकतर चावल उत्पादन क्षेत्र के लिए उनका अनुकूल न होना व बीमारियों व कीड़ों आदि के प्रति उनकी अधिक संवेदनशीलता।

इस टास्क फोर्स के शब्दों में, “अधिकतर उच्च उपज किस्में टी.एन.-1 या आई.आर.-8 से व्युत्पन्न हैं व इस कारण उनमें बौना करने का डी.जी.ओ.-वू.-जेन का जीन है। इस संकीर्ण आनुवंशिक आधार से भयानक एकरूपता उत्पन्न हो गई है। इसी कारण नाशी जंतुओं, कीट आदि व

बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता भी। प्रसारित की गई अधिकतर किस्में उच्च भूमि व निम्न भूमि, जो देश में कुल चावल क्षेत्र का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा है, के लिए अनुकूल नहीं है। इन स्थितियों में सफलता के लिए हमें अपने अनुसंधान कार्यक्रमों व रणनीतियों को पुनः विकसित करने की आवश्यकता है।” एक अन्य स्थान पर इसी टास्क फोर्स ने कहा, “भारत में जारी की गई चावल की विभिन्न किस्मों की वंशावली को सरसरी निगाह से देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि जनन-द्रव्य का आधार बहुत संकीर्ण है।”

नई किस्मों की नाशी जंतुओं के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता के विषय में टास्क फोर्स ने कहा था, “उच्च उपज किस्मों के आगमन से गाल मिज, भूरे फुदके, पत्ती मोड़ने वाले कीड़े, वोर्ल मैगट जैसे नाशी कीटों की स्थिति में उल्लेखनीय तबदीली आई है। चूंकि अब तक जारी की गई अधिकतर उच्च उपज किस्में मुख्य नाशी जंतुओं के प्रति संवेदनशील हैं व 31 से 100 प्रतिशत तक फसल की हानि होने की संभावना रहती है, उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पूर्व-स्थापित प्रतिरोध वाली किस्मों का विकास अति आवश्यक हो गया है।” पर प्रतिरोधक किस्मों के विकास का पिछला रिकार्ड तो कतई उत्साहवर्धक नहीं रहा था। जैसा कि टास्क फोर्स ने स्वीकार किया, “कीट प्रतिरोधक प्रजनन कार्यक्रम के परिणाम अभी तक उत्साहजनक नहीं रहे हैं। हालांकि नाशी जंतुओं की प्रतिरोधी कुछ किस्में जारी की गई हैं पर रत्न के अलावा इनमें से किसी का भी अच्छा प्रसार नहीं हुआ है। रत्न का भी अच्छा प्रसार वेधकों के प्रति इसकी सहन प्रकृति के कारण नहीं अपितु इसके अच्छे दाने, तैयार होने की कम अवधि व व्यापक अनुकूलनशीलता के कारण हुआ है।”

हालांकि गाल मिज के लिए दाता प्रतिरोधक मिले हैं, पर अभी तक देश में जारी की गई अधिकतर प्रतिरोधक किस्में या तो कम उत्पादक हैं अथवा विभिन्न स्थानों पर प्रतिरोध में एकरूपता नहीं दिखाती हैं। अर्थात् अधिक उपज व अधिक स्थाई प्रतिरोध का तालमेल प्राप्त नहीं किया जा सका है।”

टास्क फोर्स के इन वक्तव्यों में हम इतना ही जोड़ना चाहेंगे कि उच्च उपज किस्मों की ये समस्याएं अभी तक

बनी हुई हैं। इसके साथ यह भी जोड़ देना उचित है कि कम साधन-सम्पन्न छोटे किसानों के लिए ये किस्में विशेष रूप में समस्याप्रद हैं।

इस तरह शीर्ष से फसलों की किस्में निर्धारित करने की अति-केंद्रीकरण की नीति बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। समय के साथ यह केंद्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई है। जीएम तकनीक इस केंद्रीकरण को चरम तक ले जा सकती है।

कृषि व खाद्य क्षेत्र में जेनेटिक इंजीनियरिंग की टेक्नॉलॉजी मात्र 6-7 बहुराष्ट्रीय कंपनियों व उनकी सहयोगी या उप-कंपनियों के हाथों में केंद्रित हैं। इन कंपनियों का मूल आधार पश्चिमी देशों व विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका में है। इनका उद्देश्य जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से विश्व कृषि व खाद्य व्यवस्था पर ऐसा नियंत्रण स्थापित करना है जैसा विश्व इतिहास में आज तक संभव नहीं हुआ है।

जैफ्री एम. स्मिथ ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जेनेटिक रूले' में लिखा है कि जीएम बीज में मुख्य रूप से पांच कंपनियां हैं। इनमें मान्संटो सबसे बड़ी कंपनी है, जिसकी जीएम बीज तकनीक व किस्मों से वर्ष 2005 में विश्व की कुल जीएम फसल का 88 प्रतिशत हिस्सा बोया गया। अब यह विश्व में जीएम व अन्य सामान्य बीजों की आपूर्ति करने वाली सबसे बड़ी कंपनी बन गई है। अन्य चार जीएम कंपनियां हैं ड्यूपॉन्ट, सिंजेंटो, बायरक्रॉप साइंस व डारू। इन पांच कंपनियों के हाथ में विश्व का 35 प्रतिशत बीज बाज़ार है व 59 प्रतिशत कीटनाशक/जंतुनाशक बाज़ार है।

हाल के समय में जीएम फसलों के अनेक गंभीर दुष्परिणाम बहुत स्पष्ट रूप से सामने आ चुके हैं व इस बारे में अनेक वैज्ञानिकों की बहुत स्पष्ट राय उपलब्ध है। उदाहरण के

लिए विश्व के अनेक जाने-माने वैज्ञानिकों ने 'इंडिपेंडेंट साइंस पैनल' बनाकर जीएम फसलों के बारे में चेतावनी दी है। इस पैनल में शामिल विश्व के अनेक देशों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों ने जी.एम. फसलों पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ तैयार किया था जिसके निष्कर्ष में उन्होंने कहा है - "जीएम फसलों के बारे में जिन लाभों का वायदा किया गया था वे प्राप्त नहीं हुए हैं और ये फसलें खेतों में समस्याएं उपस्थित कर रही हैं। अब इस बारे में व्यापक सहमति है कि इन फसलों का प्रसार होने पर ट्रान्सजेनिक प्रदूषण से बचा नहीं जा सकता है। अतः जीएम फसलों व गैर जीएम फसलों का सह अस्तित्व नहीं हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जीएम फसलों की सुरक्षा प्रमाणित नहीं हुई है। दूसरी ओर, पर्याप्त प्रतिकूल प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं जिनसे इन फसलों को लेकर सुरक्षा सम्बंधी गंभीर चिंताएं उत्पन्न होती हैं। यदि इनकी उपेक्षा की गई तो स्वास्थ्य व पर्यावरण की अपूरणीय क्षति होगी। जीएम फसलों को अब दृढ़ता से अस्वीकार कर देना चाहिए।"

अनेक वैज्ञानिकों की इस तरह की स्पष्ट राय के बावजूद चंद बहुराष्ट्रीय कंपनियां करोड़ों डॉलर इन जीएम फसलों के प्रचार-प्रसार पर क्यों लगा रही हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उनका उद्देश्य मूलतः कृषि के पर्यावरण को सुधारना या खाद्य सुरक्षा को मज़बूत करना नहीं अपितु विश्व स्तर पर कृषि व खाद्य तंत्र पर अपना नियंत्रण और मज़बूत करना है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित तकनीक से केंद्रीकरण चरम सीमा पर पहुंचेगा। इससे बचना बहुत ज़रूरी है।  
(स्रोत फीचर्स)

## 2013 के स्रोत सजिल्द का ऑर्डर करें

मूल्य 200 रुपए (25 रुपए डाक खर्च)